उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी': भौतिकवादी संबंधों का मार्मिक चित्रण

डॉ. वर्षा शालिनी कुल्लू
सहायक प्राध्यापिका,
हिन्दी विभाग
गोस्सनर कॉलेज, राँची,
झारखण्ड

उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' भूमंडलीकरण के युग के एक भौतिकवादी परिवार की कहानी है। इस कहानी में गजाधर बाबू का परिवार युग के श्याम पक्ष से कुप्रभावित है- जिस परिवार में सामाजिक और पारिवारिक संबंधों का बनना और टूटना लाभ-हानि के आधार पर होता है। यह कहानी जितनी पुरानी होती जा रही है, भारतीय समाज और परिवार के लिए और-और प्रासंगिक होती जा रही है। उषा प्रियम्वदा की यह कहानी मात्र उनकी प्रतिनिधि कहानी नहीं, बल्कि यह भूमण्डलीकरण के युग की प्रतिनिधि कहानी है, जिसमें भारतीय परिवार विखंडित होते जा रहे हैं, बड़े-बुजुर्गों की प्रतिष्ठा घटती जा रही है, जिसमें परिवार के सदस्यों ने अपने आप को अपने में समेट लिया है, भले वह वह सदस्य छात्र हो, कमाता हो या नहीं, लेकिन वह अपने जीवन में 'प्रिवेसी' चाहता है, उसके जीवन शैली में कोई दखल ने दे, पिता या दादा, दादी किसी से उसका नाता सीमित है। सुशील सिद्धार्थ ने लिखा है-

"वापसी' केवल उषा प्रियम्वदा की प्रतिनिधि कहानी नहीं, उसे हिंदी कहानी की प्रतिनिधि कहानी स्वीकार किया जाना चाहिए। 'नई कहानियाँ' में प्रकाशित यह रचना सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंग द्वारा उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी गई। जो लोग उस समय के नामर सिंह की मान्यता अपर (भी) भरोसा न करें वे अपने समय में 'वापसी' पढ़ सकते हैं। गजाधर बाबू का चरित्र आज भी अकेलेपन, अवहेलना और निरंतर संकीर्ण होते पारिवारिक रिश्तों को समझने में सहायक है।"[1]

'वापसी' एक यथार्थ कहानी है, जो भूमंडलीकरण के श्याम पक्ष से ग्रसित परिवार की है और आज समाज में ऐसे भौतिकवादी परिवारों की संख्या बहुत बढ़ गई है- इस कहानी के मुखिया 'गजाधर बाबू' आज ऐसे सभी परिवारों में अकेलापन, अवहेलना, अपमान, आदि बुढ़ापे में झेल रहे हैं। जब वे धनार्जन नहीं कर रहे होते हैं तो उनके परिवार के लिए किए गए त्याग, परिश्रम, सब को परिवार के सदस्य भुला कर उनको फ़ालतू की चीज मान लेते हैं- कूड़े-कचरे की तरह उनको घर के किसी कोने में कृपा कर डाल देते हैं!

उषा प्रियम्वदा ने यह कहानी एक सच्ची पारिवारिक घटना से प्रभावित हो कर लिखी। उन्होने इस कहानी के सम्बन्ध में लिखा है-

"वापसी' कहानी मैंने इलाहबाद में ही लिखी। मेरे एक निकट के सम्बन्धी पत्नी और बच्चों से दूर, पूर्व उत्तर प्रान्त में चीनी मिल में इंजीनियर थे; उनकी पत्नी और चार बच्चे दूसरे शहर में रहकर पढ़ते थे, उनका जीवन अलग था; उनके लिए पिता केवल धनार्जन के साधन थे। अकेले रहते-रहते सम्बन्धी एकदम शुष्क और लड़ाके हो गए थे।"[2]

इस कहानी को लिखते हुए उन्होंने देखे गए परिवार के मूल दृश्यों और प्रसंगों में कुछ परिवर्तन कर कहानी को बहुत सशक्ति बनाया। उनके सम्बन्धी कहानी के "गजाधर बाबू

में के चरित्र में इतने घुल मिल गए कि वह मेरे सम्बन्धी न रहकर एक नए, अपने में ही सम्पूर्ण प्राणी बन गए थे।"[3] यथार्थ कहानी का यही गुण है कि उसमें चरित्र तो कहानीकार के देखे हुए होते हैं, लेकिन उनकी पहचान को एक अलग रूप देकर कहानीकार उनके चरित्र को एक ऐसा चरित्र बना देते हैं, जो समाज में यहाँ-वहाँ दिख जाते हैं- इस प्रकार उषा प्रियम्वदा के सम्बन्धी की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू और उनके परिवार के सदस्यगण किसी भी भौतिकवादी परिवार में दिखने वाले चरित्रों के समान दिखने लगते हैं। यही इस कहानी की प्रासंगिकता का मूलाधार है। "मेरी कल्पना और सृजन शीलता ने एक परिचित व्यक्ति की छाया का आभास मात्र लेकर 'वापसी' के गजाधर बाबू जो जन्म दिया।"[4]

आज भी यह कहानी पढ़ने पर लगता है कि कहानी के गजाधर बाबू आसपास के कई परिवारों में रह रहे हैं, जीते जी मर रहे हैं, अकेला कर दिए गए हैं, उनको नौकरी से अवकाश प्राप्त करते ही परिवार में बोझ के रूप में देखा जाने लगा है, और उनकी चारपाई को किसी भी अँधेरे कोने, बालकोनी, बरामदे आदि में डाल देने पर परिवार के सदस्य सहमत हो जाते हैं! मधुरेश में लिखा है-

"यह (कहानी) परिवेश में अजनबीपन एक बोध की कहानी है जसमें नौकरी पर बाहर रहने के कारण गजाधर बाबू लम्बी कल्पित अनुपस्थिति उन्हें परिवार के ढाँचे से बहार कर देती है। रिटायर होने के बाद जिस जीवन की कल्पना उन्होंने की थी, वह जैसे छिटक कर कहीं दूर जा पड़ता है।"[5]

पैंतीस साल तक घर-परिवार के लिए घर से दूर नौकरी से रिटायर करने के बाद गजाधर बाबू अपने घर जा रहे थे। वे बहुत खुश थे-कहानी का यह अंश देखें-

"गजाधर बाबू बहुत खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में उन्होंने इसी समय कि कल्पना की, जब वह रिटायर हो कर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकाँश समय उन्होंने अकेले रह कर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रहेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ दो रहे थे...उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादी कर दी थी। दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे।"[6]

गजाधर बाबू को लग रहा था कि उनकी साधना सफल हो गई, उनका जीवन सफल हो गया, शहर में अपना मकान हो गया, एक बेटी और एक बेटे का विवाह कर दिया। एक बेटी और दो बेटे ऊँची शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं- अब उनको परिवार के साथ रहने का अवसर मिलेगा। अकेले कमाने-खटने का चक्कर छूटा- लेकिन घर वापसी पर उनको पता चला कि उनके बनाए मकान में उनके लिए कोई जगह नहीं है, न कोई कमरा है और ने उनके बेटे और बेटी उनको कोई सम्मान देते हैं, और न पत्नी उन्हें उचित मान देती है- वे परिवार के लिए धनार्जन की मशीन भी नहीं रह गए थे। हकीकत उनको दिख रहा था- गजाधर बाबू की चारपाई बैठक से हटा दी गई है, क्योंकि उनके कारण उनके बेटों और बेटी के मित्रों को बैठने की जगह नहीं मिल पा रही थी और उनकी चारपाई बैठक से हटा दी गई-

"अगले दिन वह सुबह घूम कर लौटे तो उन्होंने पाया कि वैठक में उनकी चारपाई नहीं है...पत्नी की कोठरी में झाँका तो आचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई।"[7]

गजाधर बाबू के नौकरी से अवकाश प्राप्त कर घर वापसी के बाद उनके बेटे, अमर व नरेंद्र, बेटी बसंती और अमर की बहू उनसे न कोई सरोकार रखते थे, न उनके किसी आदेश-निर्देश को मानते थे-बड़ी बेटी कांति अपने पति के साथ रहती थी। परिवार में सब अपने मन के मालिक थे। ऐसे में गजाधर बाबू के लिए हर में अवहेलना का माहौल था और उनको इस बात का अनुभव होने लगा कि वे परिवार एक लिए बस पैसा कमाने की एक मशीन थे, और उनकी पत्नी घर में कामकाज की नौकरानी थी। गजाधर बाबू ने देखा कि पत्नी अकेली रसोई बनाती है, बहू घर कोई काम नहीं करती और न बेटी बसंती करती है। उनकी पत्नी घर का सारा काम करती है-रसोई बनाना, बर्तमान मांजना और भी बहुत कुछ। इस परिस्थिति में उन्होंने बेटी से कहा-

"आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनेगी।"[8]

बेटी बसंती न खाना न बनाना पड़े उसका उसने अनोखा रास्ता निकाला- खाना जानबूझ कर खराब बनाया ताकि कोई खा ही नहीं सके। किसी को खाना खाया नहीं गया। नरेंद्र तो हत्थे से बहन पर उखड़ गया और जब उसे पता चला कि पिता जी ने बहन को खाना बनाने की जिम्मेदारी दी है तो वह पिता जी पर भी बिफर पड़ा-"बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।"[9]

नरेंद्र के इस विरोध के बाद बहू के खाना बनाने का आदेश भी रद्द हो गया। बसंती के रंग-ढंग ठीक नहीं दिख रहे थे। गजाधर बाबू की पत्नी ने उनको बतया कि वह पड़ोस की शीला के घर बहुत आना जाना करती है, जिसके यहाँ युवा लड़के हैं। बेटी बसंती बाहर जाने वाले कपड़े पहन कर घर से निकलने को थी कि गजाधर बाबू ने उसे शिला के घर जाने से मना कर दिया, और निर्देश दिया कि पढ़ाई करे। बसंती ने खाना-पीना छोड़ दिया। दूसरी ओर, अमर ने घर के मालिक का पद संभाल लिया था और उसकी पत्नी ने एक प्रकार से 'रानी' का ! कहने का तात्पर्य यह है कि गजाधर बाबू के लिए घर में कोई स्थान नहीं था, वे घर के मुखिया नहीं थे- उनका मालिक अमर था और कोई भी उनकी सुनने वाला नहीं था। प्रेम का कोई संबंध नहीं था। फिर एक दिन उनके कानों में कुछ ऐसा पड़ा कि वे समझ गए कि वह एक इस घर-परिवार के लिए मात्र एक बोझ हैं, बूढ़े और चुक गए आदमी रह गए हैं-

"लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास में छोटी से झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट और उसी में दो गौरैयों का वार्तालाप- और अचनाक ही उन्होंने निश्चय कर लिए कि अब घर की किसी बात में दखल नहीं देंगे।"[10]

गजाधर बाबू समझ गए थे कि बच्चों के जीवन में उनका कोई स्थान नहीं है और वे घर के किसी भी बेकार कोने में उनको पड़े रहना है। घर के किसी भी मामले में हस्तक्षेप उनको नहीं करना है, भले बेटी देर शाम शीला के घर से लौटे। नरेंद्र पैसे माँगने आए तो बिना कुछ पूछे पैसे दे देना है। वे मौन हो गए थे, घर में शांति हो गई थी- बस बेटे, बहू और

बेटी की मनमानी जारी थी। अशक्त हो गई पत्नी की दैनिक दिनचर्या पहले की तरह जारी थी, फिर भी उसे संतोष था कि पति अब किसी के जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर रहे-"ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा को कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शाल्दी कर देंगे।"[11]

गजाधर बाबू को बड़ा अजीब लगा कि पत्नी कह रही है कि हम अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं, शादी कर कर देंगे, लेकिन क्या बच्चों का कोई फर्ज माता-पिता के लिए नहीं है? उनको इस बात का अनुभव पक्के तौर पर हो गया कि उनकी पत्नी ने घर में नौकरानी बने रहना अपनी नियति मान चुकी है, और गजाधर बाबू बच्चों के लिए मात्र एक धनार्जन के साधन हैं। गजाधर बाबू ने देखा कि घर में नौकर है, लेकिन वह बहू के आदेश-निर्देश पर उसका व्यक्तिगत काम करता है और उनकी पत्नी को नौकर का भी काम करना पड़ता है, तो उन्होंने नौकर काम से आने पर मना कर दिया। उनको लगा कि इससे कुछ पैसे की बचत हो जाएगी। लेकिन नौकर को हटाया जाना अमर को क्रोधित कर दिया-"बूढ़े आदमी हैं। "अमर भुनभुनाया, "चुपचाप पड़े रहें।"[12]

यह गजाधर बाबू के आत्मसम्मान पर सीधा प्रहार था। वे समझ गए कि उनका इस घर में रहना खुद की फजीहत करवाने जैसा है। उनके पास सेठ रामजीमल कि चीनी मिल नौकरी का पत्र था। उन्होंने पत्नी से कहा कि वे चीनी मिल में काम करने जाएँगे। उन्होंने जाने से पहले अपनी पत्नी से दिल की बात कही-"मैंने सोचा था कि तुम सबसे से बरसों अलग रहने के बाद अवकाश पा कर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी? आश्चर्य भाव से कहा कि- मैं?, पत्नी ने सकपका कर कहा, 'मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी फिर सयानी लकड़ी...'बात बीच में बात काट गजाधर बाबू ने थके, हारे स्वर में कहा, 'ठीक है तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कह दिया था।'

'मैं तो ऐसे ही कह दिया था' - इस एक वाक्य में गजाधर बाबू का दुःख छलक उठा। जिस व्यक्ति में पैंतीस साल नौकरी करने के बाद एक सुखद सपना देखा था कि वह परिवार के साथ रहेगा-उनकी वापसी सुखद होगी। अपने प्रेम के संसार में रहेंगे, जिसे उन्होंने अपने खून-पसीने की कमाई से सजाया था, उनका वह सपना टूट गया था। वे अपने काल में जी रहे थे, प्रेम और सहयोग से बने जीवन काल में, लेकिन उनके बच्चे नए युग में जी रहे थे- अपने लिए जीओ और गुजर जाओ! और उनकी पत्नी गजाधर बाबू के समय में ही अटकी हुई परंपरागत स्त्री थी- उन्होंने मान लिया था कि परिवार में बच्चों के साथ रहना और उनके लिए काम करना ही उनकी नियति है। गजाधर बाबू काम पर चले गए। और उनकी पत्नी ने नरेंद्र से कहा, "अरे नरेंद्र, बाबू जी कि चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"[13] बेटे ने चारपाई निकाने का आदेश दे कर पत्नी ने गजाधर बाबू को शायद अंतिम विदाई दे दी। मन में संतोष कर लिया कि जैसी जिन्दगी मिल है, उस ही जी लेना। वह जानती थी कि मात्र पैसे से ही घर नहीं चलता है। नाव खुद से नहीं चलती, उसे चलाने के लिए नाविक को नाव पर होना जरूरी होता है- और नाविक तो नौकरी पर निकला तो निकला ही रहा। गजाधर बाबू की असली वापसी तो चीनी मिल की नौकरी पर जाने से हुई। बच्चों के लिए उनका जाना सिनेमा देखने का अवसर बन गया! मनोरंजन और निजता का समय फिर से वापस लौट आया। बच्चे भूमंडलीकरण के युग में और गजाधर बाबू अपने सहयोग और प्रेम के युग में, दायित्व बोध वाले युग में और पत्नी

परंपरागत नारी की जीवन- शैली में- त्याग और दायित्वों को निभाने के लिए कृतसंकल्प। आज बहुत से परिवार में गजाधर बाबू, उनकी दायित्वों को निभाती पत्नी, अपनी मर्जी का जीवन जीते नरेंद्र, अमर और बसंती दिख जाते हैं!

सन्दर्भ सूची -

1. सं. सुशील सिद्धार्थ, (उषा प्रियम्वदा की) 10 प्रतिनिधि कहानियाँ , 2016, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2, पृष्ठ संख्या-6
2. उषा प्रियम्वदा, सम्पूर्ण कहानियाँ, 2019, राजकमल प्रकाशन, 1-बी नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-2, पृष्ठ संख्या-12
3. वही, पृष्ठ संख्या-12-13
4. वही, पृष्ठ संख्या-13
5. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास,2014, लोकभारती प्रकाशन, बरदारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, पृष्ठ संख्या-106
6. उषा प्रियम्वदा, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, 2016, किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, पृष्ठ-27
7. वही, पृष्ठ संख्या-27
8. वही, पृष्ठ संख्या-25
9. वही, पृष्ठ संख्या-27
10. वही, पृष्ठ संख्या-27
11. वही, पृष्ठ संख्या-29
12. वही, पृष्ठ संख्या-29
13. वही, पृष्ठ संख्या-30